विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P2: मध्यकालीन कविता -1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M3: आदिकाल : नामकरण एवं सीमा निर्धारण**
इकाई टैग	**HND_P2_M3**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com
इकाई लेखक	**डॉ. उमेश कुमार सिंह** सहायक प्रोफेसर, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : umesh_jnu@rediffmail.com
इकाई समीक्षक	**प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. सीमांकन
4. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- आदिकाल के नामकरण और सीमा निर्धारण को समझ सकेंगे।
- आदिकाल के नामकरण एवं सीमा निर्धारण के बारे में आने वाली कठिनाइयों से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकाल के नामकरण एवं सीमा निर्धारण के आधारों को समझ सकेंगे और
- आदिकाल की सीमाओं को समझ सकेंगे।

2. प्रस्तावना

जब हम हिंदी साहित्य के इतिहास को देखते हैं तब हमारे समक्ष पहली समस्या प्रकट होती है कि 1000 हजार वर्षों के हिंदी साहित्य के इतिहास को किस तरह पढ़ा/समझा जाय? इस संदर्भ में कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। एक तो हमारे यहाँ इतिहास लेखन की परंपरा नहीं रही। यदि घटनाओं और व्यक्तियों पर कुछ लिखा गया भी तो उनकी तिथि आदि के विषय को कोई महत्व नहीं दिया गया था। भक्तमाल आदि में यद्यपि भक्तों और कवियों के चरित्र वर्णित हैं पर उनमें तिथियों का किंचित भी निर्देश नहीं है। दूसरे कवियों ने स्वयं अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। वे या तो आवश्यकता से अधिक नम्र थे अथवा अपने सांसारिक जीवन को तुच्छ समझकर पारलौकिक सत्ता पर दृष्टि गड़ाए रहते थे। 'कवित विवेक एक नहीं मोरे' अथवा 'हौं प्रभु सब पतितन कौ टीकौ' कह कर वे अपनी हीनता वर्णित करते हैं। लगता है कि राष्ट्र निर्माण की भावना अथवा सम्मिलित संगठन का दृष्टिकोण हमारे कवियों के सामने नहीं था। प्रत्येक कवि व्यक्तित्व की परिधि में सीमित होकर परमात्मा की प्रार्थना में ही अपने को भुला देना चाहता था।

इसी समस्या को दृष्टि में रखकर इतिहास को कालखण्डों में विभाजित करके पढ़ने का प्रयास करते हैं। इसी से जुड़ा हुआ एक अन्य प्रश्न हमारे मस्तिष्क में कौंधता है कि हिंदी साहित्य में काल विभाजन, नामकरण और सीमा निर्धारण की समस्या की अनिवार्यता क्या है? इस अनिवार्यता को इतिहास में किन-किन तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित किया जाता है? इतिहास का कोई कालखंड अथवा युग इतिहास की तथ्यपूर्ण वास्तविकता को पूर्ण करता है? क्या युग की पहचान इतिहासकर की तर्कपूर्ण व्याख्या है? इन सभी प्रश्नों का समाधान खोजना अति आवश्यक है। इन प्रश्नों से टकराये बिना हिंदी साहित्य के इतिहास के आदिकाल के सही नामकरण और सीमा निर्धारण के आधारों को नहीं समझा जा सकता है।

3. सीमांकन

हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभ कब से माना जाय, इस संबंध में विद्वानों के दो मत प्रचलित हैं। एक मत सरहपाद को हिंदी का प्रथम कवि मान लेने वालों का है। इस स्थिति में हिंदी साहित्य के प्रारम्भ होने की समय-सीमा आठवीं शताब्दी ईस्वी (769) तय हो जाती है। यह सीमा राहुल जी के मतानुसार है। ग्रियर्सन, शिवसिंह सेंगर, मिश्रबंधु, डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉ. रामकुमार वर्मा इससे बहुत हद तक सहमत प्रतीत होते हैं। दूसरा पक्ष उन विद्वानों का है जो हिंदी साहित्य का आरंभ ईसा की दसवीं शताब्दी के अंतिम सात वर्षों से मानते हैं। इन विद्वानों का नेतृत्व आचार्य रामचंद शुक्ल ने किया है। इनके मतानुसार मुंज और भोज के समय 993 ईस्वी से पुरानी हिंदी का प्रयोग शुद्ध साहित्य में हुआ है।

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने आदिकाल के संबंध में अपनी जो अवधारणा बनाई है उस पर आज भी एक आलोचनात्मक बहस की आवश्यकता बनी हुई है।

इतिहास के साक्ष्यों के आधार पर हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहासकर फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी को माना जाता है जिन्होने फ्रेंच में **'इस्त्वार द ला लिटरेत्युर ऐंदुई ऐंदुस्तानी'** ग्रंथ लिखा,जिसमें हिंदी उर्दू के 738 कवियों का वृत्त वर्ण-क्रमानुसार संगृहीत हैं। इस ग्रंथ में काल विभाजन और नामकरण की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। इसका प्रथम भाग 1839 ईस्वी में तथा द्वितीय भाग 1847 में प्रकाशित हुआ था।

दूसरा महत्वपूर्ण कार्य मौलवी करीमुद्दीन का है। उन्होंने 'तकिरा-ई-शुअराई-हिंदी' नामक हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा जिसमें प्रथमबार काल-क्रम का तो ध्यान रखा गया परंतु काल विभाजन और नामकरण की कोई चेष्टा नहीं की गई।

शिवसिंह सेंगर ने 1883 में **'शिवसिंह सरोज' नाम से हिंदी साहित्य का इतिहास** लिखा। इसमें उन्होंने लगभग एक हजार भाषा कवियों का जीवन-चरित्र उनकी कविताओं के उदाहरण के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। इसमें कवियों के जन्म-काल, रचना काल आदि के संकेत दिये गए हैं।

सन 1888 में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन द्वारा रचित **' द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान'** का प्रकाशन हुआ, जो नाम से इतिहास न होते हुए भी सच्चे अर्थ में हिंदी साहित्य का पहला प्रामाणिक इतिहास कहा जा सकता है। इसमें लेखक ने कवियों और लेखकों का काल क्रमानुसार वर्गीकरण करते हुये उनकी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु ग्रियर्सन द्वारा किया हुआ काल विभाजन कई दृष्टियों से अनुपयुक्त है।

मिश्रबंधुओं द्वारा रचित 'मिश्रबंधु विनोद' चार भागों में विभक्त हैजिसमें 643 ई. से 1387 ई तक के आदिकाल को 'प्रारम्भिक काल' का नाम दिया गया है। यह एक सामान्य संज्ञा है और उसके पीछे किसी प्रवृत्ति का आधार नहीं है। प्रारम्भिक काल के पीछे हिंदी भाषा को ध्यान में रखा है। इसलिए अध्यायों के अंतर्गत प्रारम्भिक हिंदी (642 ई-1290), चंद पूर्व की हिंदी (643ई-1143 ई) रासो काल (1143 ई -1290 ई) तथा उत्तर आरंभिक हिंदी (1291 ई - 1387 ई) आदि नाम दिये हैं। प्रथम भाग 1913 में और चतुर्थ भाग 1934 में प्रकाशित हुआ।

हिंदी साहित्य का आदिकाल संवत 1050 से लेकर 1375 तक महाराजा भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय से कुछ पीछे तक माना जा सकता है। आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच शुरू के डेढ़ सौ वर्षों के भीतर रचनाओं कि किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता है। धर्म, नीति, **श्रृंगार**, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती हैं। इस अनिर्दिष्ट लोक प्रवृत्ति के उपरांत जब से मुसलमानों की चढ़ाइयों का आरंभ होता है तब से हम हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष प्रवृत्ति को बांधती हुई पाते हैं। राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों अथवा गाथाओं का वर्णन करते थे। यही प्रबंध परंपरा रासो के नाम से पायी जाती है जिसे लक्ष्य करके इस काल को 'वीरगाथा काल' कहा गया है।

नि:संदेह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जनता की चित्तवृत्तियों के साथ कवि की मनोवृत्तियों में परिवर्तन को आधार बनाकर वीरगाथा काल नाम दिया है। उसे तर्कसंगत भी कहा जा सकता है किन्तु उसकी परिधि बहुत संकीर्ण हो जाती है। आठवीं शताब्दी ईस्वी से आरंभ होने वाला वह साहित्य उससे पीछे छूट जाता है जिसे भले ही शुक्ल जी ने सांप्रप्रदायिक कहकर छोड़ दिया हो, किन्तु जो हिंदी साहित्य का अनिवार्य अंग है। साथ ही खुसरो और विद्यापति तक भी वीरगाथा की प्रवृत्ति का विस्तार नहीं हो पाता है। एक दूसरी बात यह है कि जिन रासो-काव्यों को वीरगाथा काव्य माना जाता है उनका वर्तमान रूप अप्रामाणिक है। अतः रचनाओं की संख्या गिनाकर वीरगाथाकाल को सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

शुक्ल जी ने पुरानी हिंदी को ही प्राकृताभास हिंदी या अपभ्रंश भी कहा है तथा जिन बारह कृतियों के आधार पर वीरगाथाकाल का नामकरण किया है उनमें भी वे अपभ्रंश की चार कृतियाँ बतलाते हैं एवं आगे चलकर वीरगाथा काल को अपभ्रंश काल एवं देश भाषा काव्य में विभाजित करके सरहपाद, देवसेन आदि कवियों का परिचय देते हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप वे स्वयं भी वीरगाथाकाल से संबोधित आदिकाल की सीमा सरहपाद तक पीछे लौटते हैं।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि हिंदी साहित्य के आदिकाल की सीमा विवादग्रस्त रही है। किन्तु इस सत्य से आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वान भी सहमत रहे हैं कि सिद्ध और जैन कवियों की कई रचनाओं को उसके बाहर नहीं रखा जा सकता है। आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच डेढ़ सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता है-धर्म, नीति, **श्रृंगार,** वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती हैं। राजाश्रित कवि और चारण जिस प्रकार नीति, **श्रृंगार** आदि के फुटकल दोहे राज सभाओं में सुनाया करते थे, उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन किया करते थे। यही प्रबंध परंपरा रासो के नाम से पाई जाती है जिसे लक्ष्य करके इस काल को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने वीरगाथा काल कहा है। इस काल में अपभ्रंश के दो नमूने साथ-साथ चलने का प्रमाण प्राप्त होता है। शाङ्.र्गधर हम्मीर की वीरता का वर्णन इस प्रकार करते हैं-

छलिया वीर हम्मीर पाअभर मेइणि कंपइ।
डिगमग णह अंधार धूलि सुररह आच्छाइहि॥

इस काल में खुसरो बोलचाल की भाषा में पहेलियाँ और मुकरियाँ कह रहे थे।

एक नार ने अचरज किया। साँप मार पिंजरे में दिया।

हिंदी साहित्य का काल विभाजन करने वाले प्रथम साहित्यकार डॉ. ग्रियर्सन हैं। उन्होंने आदिकाल की सीमा 1400 ई. तक मानी है। मिश्रबंधुओं ने 1389 ई. का वर्ष स्वीकार किया है। रामचन्द्र शुक्ल आदिकाल की सीमा 1318 ई मानते हैं एवं डॉ रमाशंकर शुक्ल रसाल 1343, डॉ. रामकुमार वर्मा शुक्ल जी से सहमत हैं। अन्य साहित्यकार भी शुक्ल जी से सहमत हैं। शुक्ल जी ने विद्यापति को आदिकाल में रखा है और विद्यापति का रचना काल 1375 ई से 1418 के मध्य माना जाता है। इस प्रकार आदिकाल की सीमा 1418 निर्धारित की जा सकती है।

हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहासकर गार्था द तासी के इतिहास में काल खंड का कोई विभाजन नहीं है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीरगाथाकाल 993 से 1318 ई. तक माना था क्योंकि इस कालावधि में वीरगाथाओं की रचना-प्रवृत्ति को प्रधान मानकर चले थे। परंतु जिन आधारों पर उन्होंने चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक आदिकाल

माना है उनसे वीरगाथा- प्रवृत्ति की प्रधानता अस्वीकृत हो जाती है। अतः शुक्ल जी द्वारा दिया गया वीरगाथाकाल नाम भी उचित नहीं रह जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी आपत्ति की है ।

अतः अब प्रश्न उठता है कि आदिकाल को किस नाम से पुकारा जाय? जहां तक अन्य विद्वानों के मतों का प्रश्न है वे उसे चारण काल (ग्रियर्सन) प्रारम्भिक काल (मिश्रबंधु) आदिकाल (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रसाल) संधिकाल एवं चारण काल (डॉ. रामकुमार वर्मा), सिद्ध सामंत काल (राहुल सांकृत्यायन) वीरगाथाकाल (विश्वनाथप्रसाद मिश्र) आदि कई नामों से वर्णित करते रहे हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जिन बारह ग्रन्थों के आधार पर आदिकाल का नामकरण किया है वे निम्न प्रकार हैं-

1. विजयपाल रासो-नल्लसिंग (संवत 1355),2. खुमान रासो- दलपति विजय (संवत 1180-1205),3. बीसलदेव रासों- नरपति नाल्ह (संवत 1292),4.पृथ्वीराज रासो- चंदबरदाई, (संवत 1225-1249),5. जयचंद प्रकाश- भट्ट केदार, (संवत 1225),6. जयमयंक जसचन्द्रिका-मधुकर कवि, (संवत 1240),7. हम्मीर रासो- शाङ्.र्गधर (संवत 1375),8. परमाल रासो-जगनिक (संवत 1230),9. कीर्तिलता- विद्यापति, (संवत 1460),10. कीर्तिपताका- विद्यापति (संवत 1460)11. विद्यापति पदावली-विद्यापति (संवत 1460)12. खुसरो की पहेलियाँ- अमीर खुसरो (संवत 1330)।

इन पुस्तकों को इतिहास की सामग्री बताते हुए इतिहासकारों में संकोच है क्योंकि इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है "दूसरी बात इस आदिकाल के संबंध में ध्यान देने की यह है कि इस काल की जो साहित्यिक सामग्री प्राप्त होती है उसमें कुछ तो असंदिग्ध है और कुछ संदिग्ध" है। तिथियों को निश्चयात्मक रूप से न जान सकने के कारण हमें साहित्य के काल विभाजन में कठिनाई होती है। ऐसी परस्थिति में भाषा तथा शैली में परिवर्तन, धार्मिक दृष्टिकोण से भेद अथवा राजनीतिक परिस्थियों के आधार पर ही काल विभाजन की रेखा खींचनी पड़ती है।

4. निष्कर्ष

हिंदी साहित्य के नामकरण के संबंध में उपलब्ध विभिन्न इतिहास लेखकों के तर्कसंगत साक्ष्यों और विचारों के आधार पर हजारी प्रसाद द्वेदी एवं डॉ रसाल द्वारा किया गया, नामकरण आदिकाल उचित ही जान पड़ता है। जहां तक आदिकाल की अंतिम सीमा निर्धारण का संबंध है वह अनेक विरोधाभासों के उपरांत भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा निर्धारित अंतिम समय सीमा ईसवी सन 1318 तक उचित ही जान पड़ती है। अतः इस आधार पर आदिकाल की अंतिम समय सीमा सन 1318 निर्धारित की जा सकती है।